# आई.आई.टी.

# दो इतिहास

**पी. बालाराम**

आईआईटी मुंबई

हाल ही में दो पुस्तकों ने मेरा ध्यान खींचा जो भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (आईआईटी) पर केंद्रित हैं। इनमें एक रोहित मनचंदा लिखित पुस्तक *'मॉनेस्टरी, सेंक्चुरी, लेबोरेट्री : 50 इयर्स ऑफ आईआईटी बॉम्बे'* (मैक्मिलन इंडिया, 2008) है, जबकि दूसरी किताब ई.सी. सुब्बाराव लिखित *'एन आई फॉर एक्सीलेंसः फिफ्टी इनोवेटिव इयर्स ऑफ़ आईआईटी कानपुर'* (हार्पर कॉलिंस पब्लिशर्स, इंडिया, 2008) है। ये दोनों किताबें इंजीनियरिंग व विज्ञान के क्षेत्र में देश के दो जाने-माने संस्थानों के बीते 50 सालों के घटना बहुल इतिहास पर प्रकाश डालती हैं।

लेखक अपने संस्थानों को एक विशिष्ट नज़रिए से देखते हैं। अद्भुत प्रतिभा से सम्पन्न और आईआईटी बॉम्बे में ही कार्यरत युवा प्रोफेसर मनचंदा जिस तरह से अपने पेशे से विलग होकर संस्थान के इतिहास को देखते हैं, वह मूल्यवान और शिक्षाप्रद दोनों है। आईआईटी कानपुर के वरिष्ठ वैज्ञानिक और इस संस्थान के शुरुआती कर्णधारों में से एक सुब्बाराव हमें भीतरी नज़रिए से रूबरू करवाते हैं।

1950 के दशक में स्थापित होने वाले आईआईटी सच्चे अर्थों में आज़ाद भारत की ऐसी संस्थाएं हैं जिन्होंने अपनी स्थापना के दो दशकों में ही देश के उच्च तकनीकी शिक्षा के क्षेत्र में अपनी उपलब्धियों के झंडे गाड़ दिए थे। आईआईटी और करीब आधी शताब्दी पहले उनकी स्थापना की परिस्थितियों के बारे में सोचते हुए मैं जवाहरलाल नेहरू के शब्दों को नहीं भूल सकता जो उन्होंने 1956 में आईआईटी खड़गपुर में कहे थे। उन्होंने कहा था कि ये संस्थान "भारत के भविष्य के निर्माण का, भारत की आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व" करते हैं। उस समय के अन्य किसी भी नेता की तुलना में नेहरू के पास भारत के वैज्ञानिक और प्रौद्योगिक विकास का स्पष्ट नज़रिया था।

मनचंदा आईआईटी बॉम्बे के इतिहास को बताने की शुरुआत मार्च 1959 के उस दिन से करते हैं जिस दिन जवाहरलाल नेहरू मुंबई के बाहरी इलाके पवई में संस्थान की आधारशिला रखने आए थे। वे नेहरू को उद्धृत करते हैं, "मैं मानता हूं कि आज भारत में जो कई चीज़ें की जा रही हैं, उनमें प्रौद्योगिकी प्रशिक्षण व ज्ञान के इन संस्थानों की स्थापना शायद सबसे अहम है... एक कारखाना या संयंत्र स्थापित करना अपेक्षाकृत आसान है, लेकिन ऐसे लोगों को प्रशिक्षित करना बहुत मुश्किल और समय खपाऊ होता है जो कारखाना चला सकें या नया कारखाना स्थापित कर सकें।" नेहरू ने उस कार्यक्रम को 'भविष्य को सुरक्षित रखने के प्रयास का एक और कदम' निरूपित किया था।

हाल ही में मैं आम चुनावों के सिलसिले में राजनेताओं के बारे में टीवी पर एक चर्चा सुन रहा था। उसमें एंकर ने वहां उपस्थित दर्शकों से यह जानना चाहा कि आज़ादी के बाद ऐसा एक कौन-सा राजनेता है जिसे वे सबसे ज़्यादा पसंद करते हैं। दर्शकों में अधिकांश कॉलेज जाने वाले युवा शामिल थे। थोड़े समय तक कानाफूसी के बाद एक छात्र ने जवाब दिया 'महात्मा गांधी'। कार्यक्रम एंकर ने राहत की सांस ली और वह मौजूदा राजनीतिज्ञों की लानत-मलामत करने में जुट गया जो शायद उसके लिए कहीं अधिक आसान काम था।

वैज्ञानिकों और तकनीकीविदों के प्रति नेहरू का मोह और विज्ञान के प्रति उनकी रूमानियत (ऐसा शायद कैम्ब्रिज में अध्ययन करने के कारण हुआ होगा) ही वह वज़ह होगी जिसके चलते स्वतंत्र भारत में वैज्ञानिक और तकनीकी विकास पर ज़ोर दिया गया। नेहरू के इसी दृष्टिकोण की बदौलत वैज्ञानिकों और इंजीनियरों की वे पीढ़ियां तैयार हुईं

जिन्होंने पिछले कुछ दशकों के दौरान देश के प्रत्येक संस्थान की कमान संभाली। नेहरू को भले ही भुला दिया गया हो, लेकिन उन्होंने जिन संस्थानों की स्थापना करने में मदद की, वे स्पष्ट रूप से भारत के कायाकल्प के प्रतीक हैं।

नेहरू के शासन काल (1947-1964) के एक आकलन में, हालांकि दूसरे संदर्भों में, प्रसिद्ध इतिहासकार रामचंद्र गुहा लिखते हैं: "आज़ादी के बाद 17 सालों में भारत का जितना विकास हुआ, उतना आज़ादी से पहले के 1700 सालों में नहीं हुआ था।" (*इंडिया ऑफ्टर गांधी*, पिकाडोर, लंदन, 2007, पेज 384)। यही निष्कर्ष उच्च प्रौद्योगिकी शिक्षा के क्षेत्र में भी लागू किया जा सकता है जब 1960 के दशक तक आईआईटी ने निर्णायक असर डालना शुरू कर दिया था। बीते सालों में इन संस्थानों ने इंजीनियरिंग शिक्षा के क्षेत्र में ऐसा मुकाम हासिल कर लिया है कि कई निजी संस्थानों के शुरू होने के बाद भी इन्हें कोई चुनौती देने की स्थिति में नहीं है।

ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना में उच्च प्रौद्योगिकी शिक्षा के विस्तार के साथ ही कई नए आईआईटी स्थापित किए जा रहे हैं जिनका पोषण इन्हीं पुराने संस्थानों द्वारा किया जाएगा। अपनी प्रस्तावना में मनचंदा आईआईटी के बारे में भीतरी और बाहरी अलग-अलग विचारों से अवगत करवाते हैं। वे लिखते हैं: "हालांकि आईआईटी में काम करने वाले, उनमें पढ़ने वाले और उसके साथ जीने वालों को संस्थानों की भीतरी कार्यप्रणाली से कई बार निराशा भी होती है, लेकिन तथ्य यह भी है कि कई कमियों के बावजूद आईआईटी शिक्षा, प्रबंधन, निर्णय लेने में सभी को सम्मिलित करने और अकादमिक मामलों में स्वतंत्रता को लेकर कई दूसरे भारतीय तकनीकी संस्थानों की तुलना में विशिष्ट हैं।"

संस्थानों को लेकर जहां बाहरी राय अक्सर प्रशंसात्मक होती है, वहीं अंदरूनी राय कहीं अधिक यथार्थवादी होती है। आईआईटी भी इसके अपवाद नहीं हैं। जो भी नए संस्थान प्रस्तावित हैं, उनके विकास के लिए आईआईटी के इन दोनों इतिहासों को जरूर पढ़ा जाना चाहिए। नए संस्थानों के निर्माण के लिए कार्यरत लोगों को इनसे प्रेरणा मिल सकती है। यह उन लोगों का भी ज्ञानवर्धन करेंगे जो इन संस्थानों में अध्ययन और नौकरी करते हैं। उन्हें पता चलेगा कि कैसे भीतरी आकांक्षाओं और बाहरी दबावों के साथ अकादमिक व्यवस्थाएं बनाई जा सकती हैं।

आईआईटी बॉम्बे और आईआईटी कानपुर का जन्म तब हुआ था जब शीत युद्ध चरम पर था। नेहरूवादी गुटनिरपेक्ष भावना के साथ चलते हुए आईआईटी बॉम्बे की शुरुआत पूर्व सोवियत संघ की सहायता से हुई थी, जबकि आईआईटी कानपुर की स्थापना में अमरीका के कुछ प्रमुख विश्वविद्यालयों के समूह ने सहयोग किया था।

वैसे इन दोनों संस्थानों के वास्तविक संस्थापक पुरुषोत्तम काशीनाथ केलकर (1909-1990) थे। यह साल केलकर का जन्म शताब्दी वर्ष है और यह देश के एक उम्दा संस्थान निर्माता को याद करने का अच्छा अवसर है। कानपुर में उन्होंने जिन लोगों को नियुक्त किया था, उस पीढ़ी के लोग उन्हें आज भी सम्मान की दृष्टि से देखते हैं, लेकिन बाकी लोग उनके योगदान को भुलाते जा रहे हैं। मनचंदा और सुब्बाराव की किताबें मुंबई और कानपुर के शिक्षकों और विद्यार्थियों को उसी व्यक्ति के ऋण की याद दिलाती हैं। केलकर ने भारतीय विज्ञान संस्थान (आईआईएससी), बेंगलुरु के इलेक्ट्रिकल इंजीनियरिंग विभाग में अध्ययन किया था और बाद में कई साल वहां पढ़ाया भी। इसके बाद 1943 में वे मुंबई स्थित विक्टोरिया जुबली प्रौद्योगिकी संस्थान (वीजेटीआई) चले गए। मैंने केलकर को थोड़ी देर के लिए तब देखा था, जब मैं आईआईटी कानपुर में पढ़ रहा था। उन्हें देखकर लगा था कि वे बहुत ही असाधारण किस्म के व्यक्ति थे। उन्होंने मुंबई और कानपुर में जिन संस्थानों की योजना बनाई और जिन्हें स्थापित किया, वे उनकी विशिष्ट प्रतिभा के प्रतीक हैं। केलकर को वर्ष 1956 में आईआईटी बॉम्बे के लिए योजना अधिकारी नियुक्त किया गया था। उन्होंने वीजेटीआई के एक कमरे से ही अपना काम शुरू किया था। जब उन्हें आईआईटी कानपुर का प्रथम निदेशक नियुक्त किया गया, तब तक आईआईटी मुंबई शुरू हो चुका था। पवई के कायाकल्प की प्रक्रिया शुरू हो चुकी थी। शिक्षकों के पहले बैच ने जॉइन कर लिया था। विद्यार्थियों का पहला बैच भी 1958 में प्रवेश ले चुका था।

केलकर ने कानपुर में भी अपना वही जादू दोहराया। हारकोर्ट बटलर टेक्निकल इंस्टीट्यूट के एक कामचलाऊ कमरे से काम करके केलकर ने एक ऐसा संस्थान खड़ा कर दिया जिसने भारतीय शिक्षा में एक नई ताज़गी और अभूतपूर्व उत्साह पैदा किया। 1960 के दशक में इन संस्थानों के फलने फूलने के साथ ही देश की अकादमिक प्रणाली में बदलाव की बयार बहनी शुरू हुई। इन दोनों आईआईटी के तेज़ विकास में सही लोगों की नियुक्ति और अपने साथियों को प्रेरित करने की केलकर की योग्यता का विशेष योगदान रहा है। 1970 में केलकर फिर मुंबई लौटे और वहां वे 1974 तक रहे। यहीं उनके शानदार कैरीयर का समापन हुआ।

सुब्बाराव ने केलकर को 1990 में पी.सी. कपूर द्वारा दी गई श्रद्धांजलि को उद्धृत किया है, "यह उनके अपने मूल्य (सादगी, धैर्य, श्रेष्ठता के प्रति प्रतिबद्धता, मानवीयता व दूसरों का ध्यान रखने वाला व्यवहार) ही थे जिन्होंने उन्हें अपने जीवनकाल में ही दंतकथा बना दिया।"

इन आईआईटी की स्थापना के बाद से इनके सामने कई समस्याएं आईं और इन्होंने उन पर विजय भी पाई। एक तरफ जहां अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर इनके प्रभाव में वृद्धि हुई है, वहीं आलोचकों की संख्या भी बढ़ी है। संयुक्त प्रवेश परीक्षा ने अब कोचिंग उद्योग के रूप में बड़े व्यवसाय का रूप ले लिया है। समीक्षा समितियां अनुसंधान और स्नातकोत्तर शिक्षा पर ज़ोर देती आई हैं। संस्थानों में विद्यार्थियों की संख्या बढ़ने से व्यवस्था सम्बंधी दिक्कतें आएंगी, और अध्यापकों की भर्ती भी मुश्किल होती जाएगी। नए संस्थानों का नेतृत्व भी एक नई चुनौती है। सुब्बाराव दुखद स्वर में कहते हैं कि ऐसा लगता है कि भारतीय अकादमिक संस्थानों पर यह अभिशाप है कि उनकी उत्कृष्टता एक-दो दशकों तक ही बनी रहती है और उसके बाद ह्रास शुरू हो जाता है। मगर साथ ही वे विगत दो दशकों की व्याख्या पुनर्जीवन की शुरुआत के रूप में करते हैं। वे अध्याय की शुरुआत चर्चिल के एक वक्तव्य के साथ करते हैंः "बगैर उत्साह खोए एक विफलता से दूसरी विफलता तक बढ़ने की क्षमता का नाम ही सफलता है।" सफलता और विफलता, जय और पराजय, आशा और निराशा व्यक्तियों और संस्थानों दोनों के इतिहास का प्रमुख हिस्सा हैं। दोनों आईआईटी की विकास गाथा प्रेरणास्पद व उत्साहवर्धक हैं। ***(स्रोत फीचर्स)***